RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

वैदिक साहित्य में ज्योतिष शास्त्र

डॉ0 मुकेश शर्मा

प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज पफॉर गर्ल्ज, यमुनानगर; हरियाणा

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 13 March 2019

Keywords
कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग

ABSTRACT

भारतीय ज्योतिष शास्त्र का मूल वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। ज्योतिष शास्त्र विषयक तत्त्व-तिथि, वार, नक्षत्र , अयन, पक्ष एवं मासादि का प्राथमिक ज्ञान हमें वेदों में प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र का जन्म सृष्टि उत्पत्ति के साथ ही हुआ तथा भारतीय ऋषियों ने इस पवित्र शास्त्र को ईश्वरीय कृपा से आविष्कृत किया और अपनी मेधा से प्रवृद्ध किया। आज हमारे समक्ष त्रिस्कन्ध ज्योतिष का जो विकसित, परिवर्धित रूप उपलब्ध है, वह ऋषियों की हमें देन है। ऋग्वेद में कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग का वर्णन उपलब्ध है, जिसकी वर्तमान में भी गणना प्राप्त होती है। वर्ष का परिचायक सम्वत्सर भी ऋग्वेद में उल्लिखित है। तैत्तिरीय संहिता में उत्तरायण एवं दक्षिणायन के अनुरूप अयन शब्द का प्रयोग है। अथर्ववेद में षड्ऋतु का स्पष्ट उल्लेख आता है। चान्द्रमास का उल्लेख स्पष्ट रूप से संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। नवग्रह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वैदिक साहित्य में अपना स्थान बनाए हुए है। नक्षत्रो का नाम वेदों में स्पष्ट रूप से लिखित है जो राशिचक्र का सूक्ष्म विभाजन है परन्तु स्पष्ट रूप से वर्तमान उपलब्ध वैदिक साहित्य में राशियों के नाम दृष्टिगोचर नहीं होते। त्रिस्कन्ध ज्योतिष के विविध पक्षों की वैदिक साहित्य में उपलब्धि इसकी प्राचीनता की द्योतक है।

भारतीय विचारधारा ज्योतिषशास्त्र का आरम्भ सृष्टि के साथ ही मानती है तथा वह साक्ष्य हेतु विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद को प्रस्तुत करती है। वस्तुतः ऋग्वेद से प्रारम्भ होकर अन्य वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र का उल्लेख होना इस बात की ओर निश्चयेन संकेत करता है कि भारतीय महर्षि ही इस पवित्र ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक थे।

ज्योतिषशास्त्र की सर्वमान्य परिभाषा ''ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधक शास्त्रम्'' की गयी है अर्थात् जिसमें सूर्यादि ग्रहों की गति, स्थिति, प्रभाव का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन हो वह ज्योतिष शास्त्र है। ग्रहों के बिना हम ज्योतिष शास्त्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। पाश्चात्य-ज्योतिषी भी इन ग्रहों का ही विचार करते हैं। सूर्यादि ग्रहों एवं ज्योतिषशास्त्र विषयक अन्य तत्त्वों यथा- युग, सम्वत्सर, वर्ष, मास, ऋतु, अयन, पक्ष, दिवस, तिथि, वार, नक्षत्र, मुहूर्त्त एवं राशि आदि का मौलिक या प्राथमिक ज्ञान हमें ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है:-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।ततो रात्र्यजायत
ततः समुद्रो अर्णवः।
समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।
सूर्योचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षोमथो स्वः (ऋ० 10/190/1-3)

जब जगत् की उत्पत्ति हुई तभी सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी आदि भी बनें तब सृष्टि उत्पत्ति के बाद भारतीय महर्षियों ने योगाभ्यास के द्वारा ग्रहों के पृथ्वी पर होने वाले प्रभाव का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए ज्योतिष शास्त्र के नियमों का प्रणयन किया।[1] लगधमुनिप्रणीत 'आर्चज्योतिष' भारतीय परम्परा का सर्वप्राचीन ज्योतिषशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तकों में अट्ठारह अथवा उन्नीस आचार्यों का नाम गिनाया जाता है यथा- सूर्य, पितामह, व्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अङ्गिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु, शौनक एवं पुलस्त्य। प्रायः सभी इन महर्षियों को ही ज्योतिष शास्त्र का प्रवर्तक मानते हैं। ज्योतिष

RRIJM 2015, All Rights Reserved

शास्त्र गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा श्रुत एवं पठित रूप में मानव जाति को प्राप्त हुआ है। इन पूज्य सूक्ष्मप्रज्ञा प्राप्त महर्षियों ने ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तों को विकसित किया। भारतीय त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र की उपस्थिति को ऋग्वेद काल से ही स्वीकृत किया गया है लेकिन इसके साथ ही हमें यह तथ्य भी स्वीकार करना होगा कि वैदिक ऋचाओं में उत्कृष्ट ज्योतिष ज्ञान का विशेष रूप से तात्कालीन व्यावहारिक रूप प्राप्त होता है। इससे वैदिक कालीन ज्योतिषीयज्ञान का सूक्ष्म प्रत्यक्षीकरण भी होता है।

ब्राह्मणग्रन्थों में अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन भी अनुभव में आता है क्योंकि उनमें ज्योतिषशास्त्र अपना स्वरूप विस्तृत करता हुआ दिखाई देता है। वैदिकग्रन्थों में अध्ययन, मनन, चिन्तन, यज्ञमीमांसा आदि का वर्णन करते हुए ज्योतिषशास्त्र की भी चर्चा की गयी है। तदुपरान्त स्मृति-पुराण में एवम् अन्य ज्योतिषविषयक ग्रन्थों में इस शास्त्र का स्वतन्त्र वर्णन हुआ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान कालीन ज्योतिष शास्त्र रूपी वृक्ष का मूलबीज जगत् की उत्पत्ति के साथ ही अङ्कुरित हुआ तथा भारतीय ऋषियों ने अपने योगबल से इसको सींचकर-संवारकर पुष्पित एवं पल्लवित किया।

ज्योतिष शास्त्र संसार की उत्पत्ति के साथ ही बीज रूप में अंकुरित हो चुका था। इस पर अनेक विद्वानों ने विचार प्रस्तुत किए हैं। श्री गोरख प्रसाद अपनी पुस्तक 'सौर परिवार' में लिखते हैं कि ''सूर्य, चन्द्रमा और तारे सृष्टि के आदि से ही मनुष्य के हृदय में आश्चर्य की प्रबल तरंगें उठाते रहे होंगे। यही बात है ज्योतिष का जन्म सब विज्ञानों से पहले हुआ और जिसके कारण अब तक इसमें बराबर उन्नति होती रही है''।[2]

'भारतीय ज्योतिष' में डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री कहते हैं कि ''यदि पक्षपात छोड़कर विचार किया जाए तो स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि अन्य शास्त्रों के समान भारतीय ही इस शास्त्र के आदि आविष्कर्ता हैं। योगविज्ञान जोकि भारतीय आचार्यों की विभूति माना जाता है, इसका पृष्ठाचार है। यहाँ के ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमण्डल के दर्शन किये और अपना निरीक्षण कर आकाशीय सौरमण्डल की व्यवस्था की''।[3]

श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने भी ज्योतिष शास्त्र का आविर्भाव संसार के आरम्भ के साथ ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार ''सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन नियमपूर्वक उगते और अस्त होते हैं तथा ग्रीष्म, वर्षा इत्यादि ऋतुएँ क्रमशः आती हैं। इन बातों का अत्यन्त परिचय हो जाने के कारण इस समय हमें इनके विषय में विशेष चमत्कार मालूम नहीं हो रहा है पर जगत् के आरम्भ में इन्होंने मनुष्य को चकित कर दिया होगा और आकाश के तेजों की ओर अर्थात् ज्योतिषशास्त्र की ओर मनुष्य का ध्यान उसके उत्पत्तिकाल से ही लगा होगा''।[4] डॉ० बी.वी.रमन अपने ग्रन्थ 'ग्रहों का मनुष्यों पर प्रभाव' में इस बात को स्वीकार करते हैं कि जगत् की उत्पत्ति के अनन्तर भारतीय ऋषियों ने ही मन की एकाग्रता द्वारा ग्रहों के मानवजीवन पर होने वाले प्रभाव का सूक्ष्म अध्ययन करके ज्योतिषविषयक सिद्धान्तों की स्थापना की।[5] श्री नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'भारतीयज्योतिष' में अनेक पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों के कथनों को संकलित करके यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय ऋषि ही ज्योतिषशास्त्र के मूल आविष्कर्ता रहे हैं।[6]

समस्त विद्वानों के कथनों को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष स्पष्टरूप से निकलता है कि - ज्योतिष तो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि की उत्पत्ति के साथ ही आरम्भ हो गया था क्योंकि जब सृष्टि हुई तभी से इन ग्रहादियों का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ने लग गया था परन्तु महर्षियों ने धीरे-धीरे इसके रहस्यों को जानते हुए ग्रहों के प्रभाव का गहन-अध्ययन करते हुए निश्चित सिद्धान्तों का निर्माण किया। इस प्रकार उन सिद्धान्तों ने ज्योतिषशास्त्र का रूप धारण कर लिया। समय एवं परिस्थिति के अनुसार उन नियमों, सिद्धान्तों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहा जिससे ज्योतिषशास्त्र विकसित होता चला गया और वर्तमान में हमारे समक्ष पराशर, जैमिनि, वराहमिहिर प्रभृति आचार्यों द्वारा प्रवर्त्तित अनेक ज्योतिषशास्त्र विषयक सिद्धान्त हैं।

वैदिकसाहित्य में ज्योतिष

ज्योतिषशास्त्र की प्राचीनता का उल्लेख वैदिकग्रन्थों में प्राप्त होता है। यह तथ्य सर्वविदित है कि ''जिज्ञासा, प्राणी के विज्ञानात्मक उत्कर्ष की आधारशिला है'' भारतीय महर्षियों ने भी जिज्ञासावश अपने योगबल से ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जाना तथा ज्योतिषशास्त्र का प्रणयन किया। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्रादि वैदिकग्रन्थों के निष्पक्ष अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उस काल में भारतीयों का खगोल विषयक ज्ञान कितना

समुन्नत था? वैदिकवाङ्मय से ज्ञात होता है कि दूरवीक्षक यन्त्रों के अभाव में भी खगोलविषयक ज्योतिष पदार्थों का विस्तृत वर्णन मुनियों ने किया है। वैदिक साहित्य में महत्त्वपूर्ण ज्योतिष पदार्थों का विवेचन किया गया है। इनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है :-

युगशब्द - वैदिकसंहिताओं में कालपरिमाण वाचक 'युग' शब्द का अनेकशः प्रयोग हुआ है। लेकिन 'कल्प' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में कहीं पर भी दिखलाई नहीं पड़ता है। ऋग्वेद में 'युग' शब्द अनियतकाल के बोधक रूप में प्रयोग हुआ है:-

तदूचूषे मानुषेमायुगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्। (ऋ० 1/103/4)

कृत-त्रेता-द्वापर-कलि आदि चतुर्युगों के अर्थ में भी 'युग' शब्द वेद में दृष्टि-गोचर होता है।

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्। देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत।। ऋ० 10/72/2।

वेदों में 'युग' शब्द का प्रयोग तो मिलता ही है, कृत-त्रेतादि भी स्पष्टरूप से जहाँ-तहाँ दृष्टि गोचर होते हैं। 'वाजसनेयी संहिता' में कृतादिशब्द स्पष्ट-रूप से उल्लिखित हैं।

सम्वत्सर - ऋग्वेद में वर्ष के वाचक शरद् और हेमन्तशब्द आये हैं। वहाँ इन शब्दों का अर्थ सम्वत्सर माना गया है। गोपथब्राह्मण में वर्ष के लिए हायन शब्द प्रयुक्त है। वैदिकसाहित्य के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि सम्वत्सर, वर्ष, हायन, समा आदि शब्द समानार्थक तथा वर्षप्रमाण के काल बोधक ही हैं। वर्ष के बारे में श्री नेमिचन्द्र शास्त्री कहते हैं कि ''यों तो वैदिककाल में वर्ष के चान्द्र और सौर ये दो भेद भी प्रकट हो गये थे। वैसे तो मासों की गणना चान्द्रमास के अनुसार भी मिलती है। तथा सौर और चान्द्र के समन्वय करने के लिए प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिकमास भी जोड़ा जाता था। उस समय की व्यावहारिक वर्ष प्रणाली आजकल की वर्ष प्रणाली से भिन्न थी।''[7]

अयन - भारतीय ज्योतिष में उत्तर एवं दक्षिण नाम से दो अयन स्वीकार किए गए हैं। सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का मकर राशि में प्रवेश ही उत्तरायण का आरम्भ तथा क्रमशः भ्रमण करते हुए कर्क राशि में प्रवेश दक्षिणायन का आरम्भ होता है। प्रत्येक अयन में सूर्य छह-छह राशियों में भ्रमण करता है। ऋग्वेद में 'अयन' शब्द अनेक स्थलों पर आया है परन्तु उससे यह निश्चित नहीं होता है कि यह दक्षिणायन एवं उत्तरायण का ही बोधक है। शतपथ ब्राह्मण में 'अयन' शब्द का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीयसंहिता में वर्तमान के अनुरूप छह मास सूर्य के उत्तरायण का तथा छह मास दक्षिणायन का वर्णन किया गया है:-

तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेणोपयामगृहीतोऽसि। (तै०स० 6/5/3/4)

इस तरह वैदिक ग्रन्थों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि उस समय में अयन ज्ञान का प्रचलन था।

ऋतु - ऋतुओं का ज्ञान वैदिकग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है। वैदिकसाहित्य के अध्ययन क्रम से यह ज्ञात हो जाता है कि ऋतुओं की संख्या छह ही थी तथा इन ऋतुओं का कारण सूर्य था। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर भ्रमण करती हुई सूर्य का एक भ्रमण एक वर्ष में पूर्ण करती है। इस एक वर्ष के भ्रमण में सूर्य का पृथ्वी पर न्यूनाधिक रश्मिप्रभाव ही छह ऋतुओं का नियमन करता है। ऋग्वेद संहिता में कहा गया है कि सूर्य ही ऋतुओं का नियमन करते हुए क्रम से पृथ्वी की दिशाओं का निर्माण करता है:-

त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्रदिशं पार्थिवानामृतून प्रशासद विदधाव नुष्टु।। (ऋ० 1/95/3)

अथर्ववेद संहिता में समस्त छह ऋतुओं के नाम का स्पष्टोल्लेख किया गया है। वहाँ पर वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर का इस क्रम से उल्लेख है:-

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद वर्षाः स्विते नो दधात। (अथर्व० 6/55/2)

ऐतरेय ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में अथर्ववेद संहिता की अपेक्षा पाँच ऋतुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में एक सम्वत्सर में पाँच ऋतुओं का वर्णन किया गया है। यहाँ पर वस्तुतः हेमन्त एवं शिशिर का ऐक्यभाव करके छह की अपेक्षा पाँच ऋतुओं का वर्णन किया गया है।

मास - भारतवर्ष में प्रमुखतः सौरमास एवं चान्द्रमास का प्रयोग होता है। इन मासों की संख्या एक वर्ष में बारह निश्चित होती है। चान्द्रमास एवं सौरमास के समन्वय के लिए अधिकमास की आवश्यकता होती है। प्रत्येक वर्ष में इन दोनों मासों का परस्पर अन्तर लगभग दस दिन का होता है। प्रायः तीन वर्ष के उपरान्त जब यह अन्तर एक चान्द्रमास के बराबर हो जाता है तब एक अधिमास जोड़कर इस अन्तर को समाप्त

किया जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीयज्योतिष में क्षयमास की भी चर्चा प्राप्त होती है। यह क्षयमास प्रायः उन्नीस वर्ष के बाद सम्भावित होता है। क्षयमास एवं अधिकमास को सैद्धान्तिक रूप से परिभाषित किया जा सकता है। जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह अधिकमास तथा जिस चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हो जाए वह क्षयमास होता है।[8] वैदिकसाहित्य में उपर्युक्त चौदह-मासों का वर्णन किया है। तैत्तिरीयसंहिता में चतुर्दशमासों का उल्लेख स्पष्टरूप से किया हुआ है:-

> मधुश्च माधवश्च शुक्रश्च शुचिश्च नभश्च नभस्यश्चेषश्चोर्जश्च सहश्च सहस्यश्च (तै० सं० 1/4/14)

वैदिकसाहित्य में उल्लिखित नामों एवं वर्तमान में प्रचलित नामों में अन्तर अवश्य है। वर्तमान में प्रचलित नाम नक्षत्रमूलक है परन्तु वैदिकसाहित्य में स्पष्टतः नक्षत्रमूलक नाम मासों के नहीं हैं। इस विषय में डॉ० सुरकान्त झा अपने ग्रन्थ 'भारतीय ज्यौतिष विज्ञान' में लिखते हैं कि इन मासों के नक्षत्रमूलक नामों की कल्पना का आधार अवश्य प्राप्त होता है। एतदर्थ वह तैत्तिरीय संहिता का उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं जहाँ पर नक्षत्र एवं पूर्णिमा का कुछ-कुछ संयोग दर्शाया गया है।[9] इस प्रकार मास नामों में साम्य का अभाव अवश्य है परन्तु वैदिकग्रन्थों में द्वादश मासों की अधिक व क्षयमाससहित कल्पना स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पूर्णिमान्त और अमान्तचान्द्रमास- कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाले और पूर्णिमा की समाप्ति के साथ समाप्त होने वाले अर्थात् एक पूर्णिमा की समाप्ति से दूसरी पूर्णिमा की समाप्ति तक चलने वाले मास को पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहा जाता है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाले और अमावस्या की समाप्ति के साथ समाप्त होने वाले अर्थात् एक अमावस्या की समाप्ति से दूसरी अमावस्या की समाप्ति तक चलने वाले मास को अमान्त चान्द्रमास कहा जाता है।

वेदों में इन दोनों प्रकार के चान्द्रमासों का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीयसंहिता के कुछ वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है कि अमान्त और पूर्णिमान्त दोनों प्रकार के चान्द्रमास माने जाते थे:-

> अमावास्यया मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यमावास्यया हिमासान्त्संपश्यन्ति। (तै० सं० 5/5/6/1)

सौरमास - वेदों में सौरमास का उल्लेख कहीं हुआ है या नहीं, इस विषय में शंकर बालकृष्ण दीक्षित का कथन कि ''सावन और चान्द्रमास तो वेदों में हैं पर उनमें सौरमास का स्पष्ट उल्लेख मुझे नहीं मिला। भचक्र का द्वादशांश भोगने में सूर्य को जितना समय लगता है, उसे सौरमास कहते हैं। मेषादि द्वादशराशियों के नाम तो वेदों में नहीं ही हैं पर भचक्र के द्वादश तुल्यभागों के उन सरीखे अन्य नाम भी नहीं हैं। वेदोक्त मधु-माधवादि नाम सौरमासों के नहीं हैं, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके अर्थ का सम्बन्ध ऋतुओं से अर्थात् सूर्य से है, इतना ही नहीं, मध्वादिकों को ऋतु भी कहा है परन्तु वेदों में ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता जिससे यह प्रकट हो कि उन मासों की समाप्ति पूर्णिमा या अमावस्या के अतिरिक्त किसी अन्य दिवस में भी होती थी। पूर्णिमा और अमावस्या में मासान्त होने का निर्देश है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये नाम पूर्णिमा या अमावस्या में समाप्त होने वाले चान्द्रमास के ही हैं तथापि वर्ष सौर था, यह निर्विवाद सिद्ध है। अतः चान्द्रमास से भिन्न मान के सौरमास भी अवश्य रहे होंगे और मध्वादि संज्ञाओं का प्रयोग दोनों के लिए किया जाता रहा होगा।[10] दीक्षितजी के उक्त कथन के प्रकाश में साररूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि वैदिक साहित्य में सौरमास का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता किन्तु यह भी नहीं माना जा सकता कि उस काल में सौरमास का ज्ञान तनिक भी नहीं था।

पक्ष - पक्ष दो हैं - शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष। दोनों पक्षों को मिलाकर एक चान्द्रमास बनता है। शुक्लादि चान्द्रमास अमावस्या पर समाप्त होता है तथा कृष्णादि चान्द्रमास पूर्णिमा पर समाप्त होता है। एक ऐसा उदाहरण है जिसमें दोनों पक्षों का उल्लेख हुआ है। वहाँ यद्यपि शुक्ल और कृष्ण शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ, पूर्व और अपर शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु पूर्व पक्ष को शुभ बताया गया है तथा अपर पक्ष को अशुभ। एक स्थान पर कहा गया है कि पूर्वपक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर, अतः देवताओं की जय हुई और असुरों की पराजय:-

> तौ पूर्वपक्षश्चापरपक्षश्चा भवताम्। पूर्वपक्षं देवा अन्वसृज्यन्त। अपरपक्ष मन्वसुराः। (तै० ब्रा०, 2/2/3/1)

इन उदाहरणों में यद्यपि शुक्ल और कृष्ण शब्द नहीं आए हैं किन्तु शुक्ल पक्ष को शुभ माना जाता है तथा इसका सम्बन्ध देवताओं से है एवं कृष्ण पक्ष को अशुभ माना जाता

है तथा इसका सम्बन्ध असुरों से है। अतः यहाँ पूर्व पक्ष का अर्थ शुक्लपक्ष है एवं अपर पक्ष का अर्थ कृष्णपक्ष है। वर्तमान में भी शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष को क्रमशः शुभ एवं अशुभ माना जाता है। अतः वैदिककाल में शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष का ज्ञान था और उनका कुशलता पूर्वक व्यवहार भी किया जाता था।

नवग्रह – भारतीय ज्योतिष शास्त्र के सर्वविदित नवग्रहों में से सूर्य एवं चन्द्र का अनेकशः स्पष्ट प्रयोग हुआ है। ग्रहण के प्रसङ्ग. में राहु-केतु का विचार किया गया है। ऋग्वेद संहिता में ऐसा वर्णन आता है जिसमें बताया गया है कि स्वर्भानु नामक असुर, जो अन्धकार रूप है, सूर्य को अपने अन्धकार से आच्छादित करता है:-

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः। अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन्।। (ऋ० 5/40/9)

वेदों में इन चारों के अतिरिक्त भौमादि पाँच ग्रहों की चर्चा स्पष्ट रूप से नहीं है, लेकिन इनके बारे में चिन्तन करने योग्य अनेक स्थल हैं। ऋग्वेद संहिता में पंचदेवों (ग्रहों) का वर्णन इस रूप में प्राप्त होता है ''ये प्रबल पाँच देव विस्तीर्ण द्युलोक के मध्य में रहते हैं, मैं उन देवों के सम्बन्ध में स्तोत्र तैयार करना चाहता हूँ। वे सब एक साथ आने वाले थे, लेकिन आज वे सब निकल गए:-

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्येतस्थुर्महो दिवः। (ऋ० 1/105/100)

प्रायः मंगल का उल्लेख स्पष्ट रूप से वेदों में प्राप्त नहीं होता परन्तु उसकी सम्भावना को उसके आधुनिक प्रचलित लक्षण से अनुमान किया जा सकता है। डॉ० सुरकान्त झा के मतानुसार ''यजुर्वेद में मंगल का वर्ण ताम्र या बभ्रु और अपने प्रकाश से युक्त होने का वर्णन स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर होता है।''[11]

वैदिक ग्रन्थों में 'बृहस्पति' का वर्णन भी देवता के रूप में हुआ है। वहीं पर उसके ग्रह होने का लक्षण भी से अनुभव किया जा सकता है। ऋग्वेद संहिता में बृहस्पति की उत्पत्ति का वर्णन बहुत स्पष्टता से किया गया है। इसमें कहा गया है बृहस्पति प्रथम मण्डल में महान दीप्तिमान उच्चस्वर्ग में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ :-

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्। (ऋ० 4/50/4)

शुक्र का भी उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में है ऐसा भारतीय विद्वान स्वीकार करते हैं। लैटिन भाषा में शुक्र के लिए वीनस शब्द का प्रयोग होता है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने ग्रन्थ 'भारतीयज्योतिष' में कहते हैं कि ''यह सूक्त वेन देवतात्मक है। वर्णन के ढंग से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त आकाशस्थ किसी बृहज्ज्योति अर्थात् तारा या ग्रह के उद्देश्य से कहा गया है। वेद के कुछ अन्य वर्णनों से ज्ञात होता है कि यह सूक्त शुक्र विषयक है''[12]। उपर्युक्त अनुमान उन्होंने ऋग्वेद से लगाया है। इस संहिता में लैटिन शब्द वीन की अपेक्षा वेनस् शब्द का प्रयोग हुआ है:-

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायूरजसो विमाने। (ऋ० 10/123/1)

इससे इस धारणा को भी बल मिलता है कि वेनस् शब्द वैदिक है तथा कुछ परिवर्तन के साथ लैटिन में उसे शुक्र के अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा है। वैदिककाल में ग्रहों के सम्बोधन के लिए वैदिक ग्रहशब्द का ही प्रयोग हुआ है। अथर्ववेदसंहिता में बतलाया गया है कि आकाश में भ्रमणशील ग्रह और सूर्य-चन्द्रादिग्रह राहु से उत्पन्नदोष का शमन कर सबका कल्याण करते हैं:-

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। (अथर्व० 19/9/10)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जाना कठिन नहीं है कि वेदकाल में भारतीयों को सूर्य, चन्द्र के साथ राहु, केतु, गुरु, शुक्र एवं भौमादिग्रहों का समुन्नत ज्ञान था।

राशि – वैदिक साहित्य में राशियों का विचार स्पष्ट रूप से दृष्टि में नहीं आता है। श्री नेमिचन्द्र शास्त्री अपने ग्रन्थ 'भारतीयज्योतिष' में अपने विचारों को प्रकट करते हैं – ''स्पष्ट आगम प्रमाण के अभाव में भी युक्ति द्वारा इतना तो मानना ही पड़ेगा कि आकाश मण्डल का राशि एक स्थूल अवयव है और नक्षत्र सूक्ष्म अवयव है। जब भारतीयों ने सौरजगत् के सूक्ष्म अवयव नक्षत्रों का इतनी गम्भीरता के साथ ऊहापोह किया था, तब क्या वे स्थूल-अवयव राशि के बारे में कुछ भी विचार नहीं करते होंगे? साधारणतः बुद्धिद्वारा इस प्रश्न का उत्तर यही मिलेगा कि प्राचीनभारतीयों ने जहाँ सूक्ष्म अवयव नक्षत्रों को साहित्यिक मूर्त्तिमान् रूप प्रदान किया है, वहाँ अवयव-राशियों को भी अवश्य साहित्यिकरूप प्रदान किया होगा। एक दूसरी बात यह भी है कि आज हमारा प्राचीन साहित्य उपलब्ध भी

नहीं है। सम्भवत: जिस ग्रन्थ में राशियों का विवेचन किया गया हो, वह ग्रन्थ नष्ट हो गया हो या किसी प्राचीन ग्रन्थागार में पड़ा अन्वेषकों की बाट जोह रहा हो।''

ऋग्वेद संहिता का उदाहरण देकर द्वादश राशियों की कल्पना का प्रयास अवश्य किया गया है। द्वादशारं शब्द को बारह-राशियों का सूचक माना गया है।

1. द्र०: ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार, पृष्ठ 8
2. द्र० :सौरपरिवार, पृष्ठ 1
3. द्र० :भा०ज्यो० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ 21
4. द्र० :भा०ज्यो०, शंकरबालकृष्ण दीक्षित, पृष्ठ 2
5. द्र० रूच्संदमजमतल प्दसिनदबम वद ीनउंद ींपितेए प्दजतवकनबजवतल ।
6. द्र०:भा०ज्यो० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० 27
7. द्र०:भा०ज्यो० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ 5
8. द्र०:ज्यो०स० डॉ० सुरेशचन्द्रमिश्र, पृ०28
9. द्र०: भा०ज्यौ०वि० डॉ० सुरकान्तझा, पृ०13
10. द्र०: भा०ज्यो० श्रीशंकरबालकृष्ण दीक्षित, पृ० 56
11. द्र०:भा०ज्यौ०वि० डॉ० सुरकान्त झा, पृ०19
12. द्र०:भा०ज्यो० श्रीशंकरबालकृष्ण दीक्षित, पृ०89

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्वज्योतिषम् -सुधाकर सोमाकर भाष्य,मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, बनारस
2. अथर्ववेदसंहिता- पं० माधवाचार्य शास्त्री, माधव पुस्तकालय, 103-ए
3. ऋग्वेदसंहिता-सायण भाष्य-वैदिक संशोधन मण्डल पूना, शक सम्वत्, 1868
4. ऐतरेयब्राह्मण-श्री सायणाचार्य/सुधाकर मालवीय तारा प्रिटिंग वर्क्स, वाराणसी, 1980
5. ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार-डॉ० शुकदेव चतुर्वेदी,मोतीलालबनारसीदास,नईदिल्ली, 2004
6. ज्योतिषसर्वस्व-डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र,रंजन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण-श्री महादेव शास्त्री, मोती लाल बनारसीदास, नई दिल्ली 1985
8. तैत्तिरीय संहिता- श्री पाद दामोदर स्वाध्याय मण्डल, पारडीनगर, सूरत, 1957
9. भारतीय ज्योतिष- डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, 2004
10. भारतीय ज्योतिष- श्री शिवनाथ झारखण्डी प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश, 1957
11. भारतीय ज्यौतिषविज्ञान- डॉ० सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदासअकादमी,वाराणसी, 2006
12. भारतीयवास्तुशास्त्र- प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत
13. विद्यापीठ, कटवारियासराय, नई दिल्ली, 2004

RRIJM 2015, All Rights Reserved